संतुलित नीतिगत दृष्टि

देश का सर्वांगीण विकास सुनिश्चित करने के लिए प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी ने नीति आयोग की शासकीय परिषद की बैठक में अपनी प्राथमिकताओं को रेखांकित किया है. हालांकि भारतीय अर्थव्यवस्था संतुलित गति से विकासशील है, परंतु आंतरिक और अंतरराष्ट्रीय कारकों के कारण वृद्धि दर बाधित हुई है. इस अवरोध से पार पाने के लिए उन्होंने राज्यों से प्रमुख क्षमताओं को चिह्नित कर जिले के स्तर से सकल घरेलू उत्पादन को बढ़ाने का आह्वान किया है. जैसा कि प्रधानमंत्री ने कहा है, पांच वर्षों में अर्थव्यवस्था को पांच ट्रिलियन डॉलर के स्तर तक पहुंचाने का लक्ष्य चुनौतीपूर्ण अवश्य है, पर असंभव कतई नहीं. 'सबका साथ, सबका विकास, सबका विश्वास' के सूत्र को साकार कर आर्थिक विकास हासिल किया जा सकता है. इसके लिए रोजगार और आय बढ़ाने के प्रयासों पर ध्यान देने की आवश्यकता है. इसके लिए निर्यात में बढ़ोतरी के लिए पहलकदमी करनी होगी. हाल के समय में निर्यात में अपेक्षित बढ़त नहीं होने तथा आयात अधिक होने से व्यापार घाटा बढ़ता जा रहा है. यह देशी उद्योगों, रुपये की कीमत और विदेशी मुद्रा भंडार के लिए चिंताजनक है. अमेरिकी संरक्षणवादी नीतियों, शुल्कों को लेकर भारत और चीन से उसकी तकरार तथा दुनिया के विभिन्न हिस्सों में राजनीतिक व वाणिज्यिक अनिश्चितताओं ने जहां भारत के कुछ मुश्किलें पैदा की हैं, वहीं व्यापारिक संभावनाओं के द्वार भी खोले हैं. ऐसे में, जाहिर है, अगर केंद्र और राज्य सरकारें साझा उत्साह से घरेलू उत्पादन को बढ़ाने की कोशिश करती हैं, तो नतीजे सकारात्मक हो सकते हैं. इस प्रयास में घरेलू मोर्चे पर बहुत कुछ किया जाना है. इस संदर्भ में शासन को क्षमतावान, पारदर्शी और अपेक्षाओं पर खरे उतरने योग्य बनाने पर प्रधानमंत्री का जोर सराहनीय है. लंबे समय से जारी कृषि संकट से निबटने के लिए सरकार ने अनेक कदम उठाये हैं, लेकिन इस मामले में संरचनात्मक सुधार के लिए अब एक विशेष कार्य बल गठित किया जा रहा है. इसी के साथ जल संरक्षण और प्रबंधन पर ध्यान देने तथा हर गांव तक आगामी पांच सालों में पीने का पानी पहुंचाने का लक्ष्य एक महत्वपूर्ण पहल है. आज भी हमारे देश की बहुत बड़ी आबादी जीविका के लिए खेती और उससे जुड़े व्यवसायों पर निर्भर है. ग्रामीण अर्थव्यवस्था को मजबूती देने के लिए फसल की उचित कीमत के साथ सिंचाई और पेयजल का इंतजाम जरूरी है. कमजोर मॉनसून, भूजल के स्तर में कमी तथा भयानक गर्मी के कारण आज लगभग आधे देश में सूखे की स्थिति है. इन मसलों पर केंद्र सरकार की कोशिशों के साथ राज्यों को मिल-जुल कर काम करना चाहिए. ग्रामीण अर्थव्यवस्था की बेहतरी से न सिर्फ घरेलू मांग को बढ़ावा मिलेगा, बल्कि निर्यात बढ़ाने में भी मदद मिलेगी. इसी तरह से स्वास्थ्य-संबंधी पहलों में भी राज्यों को सहभागिता करनी चाहिए. नीति आयोग की बैठक में राज्यों की चिंताओं और सुझावों पर भी आयोग और केंद्र सरकार को पूरा ध्यान देना चाहिए. संघीय सहकार की भावना ही देश को विकास और समृद्धि की राह पर अग्रसर कर सकती है.

जाहिर है, अगर केंद्र और राज्य सरकारें साझा उत्साह से घरेलू उत्पादन को बढ़ाने की कोशिश करती हैं, तो नतीजे सकारात्मक हो सकते हैं.

समाज में बुजुर्गों की अनदेखी

देश की बड़ी आबादी तेजी से बुजुर्ग हो रही है. बेहतर खान पान और स्वास्थ्य सेवाओं ने लोगों की उम्र बढ़ा दी है, लेकिन हालात बदल रहे हैं और पुराना सामाजिक तानाबाना टूटता जा रहा है. संयुक्त परिवारों का दौर चला गया. एकल परिवारों में मां-बाप के लिए स्थान नहीं है. बुजुर्गों की देखभाल एक व्यापक समस्या के रूप में सामने आ रही है. सबसे चिंताजनक पहलू है कि समाज ने बुजुर्गों का सम्मान करना बंद कर दिया है. उनके अनुभव का लाभ उठाने की बजाय उन्हें बोझ समझा जाने लगा है. यह नयी सामाजिक व्यवस्था की कड़वी सच्चाई है.

बिहार के मुख्यमंत्री नीतीश कुमार सामाजिक सुधार के मामले में अव्वल हैं. राज्य में शराबबंदी, दहेज प्रथा और बाल विवाह जैसी सामाजिक कुरीतियों को समाप्त करने की पहल के बाद उन्होंने बुजुर्गों को सम्मान की दिशा में भी महत्वपूर्ण कदम उठाया है. बेटे-बेटियों से प्रताड़ित होनेवाले माता-पिता को यह अधिकार दिया गया है कि अब वे डीएम के पास अपील कर सकेंगे. उन्हें शिकायत के लिए अब परिवार न्यायालय में जाने की जरूरत नहीं होगी. ऐसे मामलों की अपील की सुनवाई करने का अधिकार अब डीएम को सौंपा गया है. बिहार कैबिनेट ने माता-पिता के भरण-पोषण तथा कल्याण अधिनियम, 2007 के तहत गठित अपील अधिकरण के अध्यक्ष डीएम को बनाने की मंजूरी दे दी है. इसके पहले यह प्रक्रिया जटिल थी. माता-पिता भरण पोषण की जिम्मेदारी किसी संतान द्वारा न निभाने पर अनुमंडल स्तर पर एसडीओ की अध्यक्षता में गठित ट्रिब्यूनल में हस्तक्षेप का निवेदन कर सकते थे. ट्रिब्यूनल के फैसले का पालन नहीं होने पर उन्हें जिले के परिवार न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश के कोर्ट में अपील के लिए जाना पड़ता था. उपलब्ध सूचनाओं के अनुसार यह कानून 2007 में बना, लेकिन जटिल प्रक्रिया के कारण अब तक कोई भी वरिष्ठ नागरिक परिवार अपील में नहीं गया है. बुजुर्गों के पास या तो साधन नहीं थे या वे अदालत जाने का साहस नहीं जुटा पाये. इसे देखते हुए नीतीश सरकार ने इसमें परिवर्तन किया. इससे यह सुविधा होगी कि समाज कल्याण विभाग समय-समय पर माता-पिता व वरिष्ठ नागरिकों की समस्याओं की मॉनीटरिंग भी कर सकेगा. इसके पहले सुनवाई का अधिकार परिवार न्यायालय में होने के कारण विभाग उसकी समीक्षा नहीं कर सकता था. माता-पिता और वरिष्ठ नागरिकों का भरण-पोषण तथा कल्याण अधिनियम, 2007 की धारा 25 (2) में सजा का प्रावधान है. इस प्रकार का अपराध संज्ञेय और जमानतीय है. इस कानून के तहत ट्रिब्यूनल बेटे-बेटी को पैतृक संपत्ति से बेदखल भी कर सकता है.

दरअसल, नयी अर्थव्यवस्था और टेक्नोलॉजी के साथ भारत भी ग्लोबल हो रहा है. हम पश्चिम का मॉडल तो अपना रहे हैं, लेकिन उससे उत्पन्न हो रही समस्याओं पर हमारा ध्यान नहीं गया है. जब भारत में वैश्वीकरण का दौर शुरू हुआ था, तो इसके असर के बारे में गंभीर विमर्श नहीं हुआ. अगर वैश्वीकरण के फायदे हैं, तो अनेक नुकसान भी हैं. यह संभव नहीं है कि आप विदेशी पूंजी निवेश की अनुमति दें और आपकी संस्कृति में कोई बदलाव न आए. कुछ समय पहले तक भारत में संयुक्त परिवार की व्यवस्था थी, जिसमें बुजुर्ग परिवार के अभिन्न हिस्सा थे. यह खंडित हो गयी. नयी व्यवस्था में परिवार एकल हो गये- पति, पत्नी और बच्चे. यह पश्चिमी देशों का मॉडल है. इसमें माता-पिता का कोई स्थान नहीं हैं. जब भी मौका मिलता है, मैं अपने इस अनुभव को साझा करता हूं. बीबीसी में नौकरी के दौरान मुझे लंदन में रहने का अवसर मिला. बीबीसी बेहद प्रतिष्ठित और उदार मीडिया संस्थान है. उस दौरान पूरे परिवार को लंदन जाने के लिए आश्रित वीजा और हवाई यात्रा का टिकट मिला, तो मैंने कहा कि कि मेरी मां मुझ पर निर्भर है और मैं अकेला बेटा हूं, उन्हें भी आश्रित वीजा और यात्रा का टिकट चाहिए. बीबीसी ने बताया कि पश्चिम के सभी देशों में परिवार की परिभाषा है- पति, पत्नी और 18 साल से कम उम्र के बच्चे. बूढ़े मां-बाप और 18 साल से अधिक उम्र के बच्चे परिवार का हिस्सा नहीं माने जाते हैं. अगर आप गौर करें, तो पायेंगे कि भारत में भी अनेक संस्थान और विदेशी पूंजी निवेश वाली हेल्थ इंश्योरेंस कंपनियां परिवार की इसी परिभाषा पर काम करने लगी हैं. सामाजिक व्यवस्था में आये इस बदलाव को हमने नोटिस नहीं किया है.

जीवन के दो पड़ाव है बचपन और बुढ़ापा, जब हर शख्स को सहारे की जरूरत पड़ती है. कुछ समय पहले विश्व फोटोग्राफी दिवस पर बीबीसी की वेबसाइट ने वृद्धाश्रम में रोती दादी-पोती की तस्वीर को सबसे प्रभावशाली तस्वीरों में से एक माना था. स्कूली बच्चों को अहमदाबाद के एक वृद्धाश्रम ले जाया गया था. वहां मौजूद फोटोग्राफर ने अनुरोध किया कि अगर बच्चे और वृद्धाश्रम की महिलाएं एक साथ बैठेंगे, तो तस्वीर अच्छी आयेगी, लेकिन इस दौरान एक बच्ची एक वृद्धा से मिल कर जोर-जोर से रोने लगी. पता चला कि वे तो दादी-पोती हैं और बच्ची को पता ही नहीं था कि दादी वृद्धाश्रम में रह रही है. माता-पिता ने उसे झूठ बोला था कि दादी उन्हें छोड़ कर गांव चली गयी है. यह तस्वीर देश में वृद्धजनों को लेकर समाज की सोच में आये बदलाव को दर्शाती है. ऐसा अनुमान है कि भारत में अभी छह फीसदी आबादी 60 साल या उससे अधिक की है, लेकिन 2050 तक बुजुर्गों की इस संख्या के बढ़ कर 20 फीसदी तक होने का अनुमान है.

पश्चिमी देशों में वृद्धजनों के सामने चुनौती है, लेकिन अलग किस्म की है. उनके लिए पर्याप्त पेंशन की व्यवस्था है. उनके सामने मुख्य समस्या एकाकीपन की है. वयस्क होने पर बच्चे अलग रहने लगते हैं और केवल विशेष अवसरों पर ही उनसे मिलने आते हैं. पश्चिमी देशों में बुजुर्गों की देखभाल के लिए ओल्ड एज होम जैसी व्यवस्था है, लेकिन भारत में ऐसी कोई व्यवस्था नहीं है. पश्चिमी देशों की आबादी भी कम है, छोटे देश हैं, वहां व्यवस्था करना आसान है. भारत जैसे बड़ी आबादी और बड़े भू-भाग वाले देश में कोई भी व्यवस्था करना बेहद कठिन काम है. बुजुर्ग यदि आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर नहीं हुए, तो समस्या और जटिल हो जाती है. उम्र के इस पड़ाव पर स्वास्थ्य पर खर्च बढ़ जाता है. संगठित क्षेत्र में काम करने वालों को तो पेंशन या रिटायरमेंट के बाद की अन्य वित्तीय सुविधाएं मिल जाती हैं. असंगठित क्षेत्र में काम करने वालों की स्थिति सबसे अधिक चिंताजनक है. उन्हें ऐसी कोई सुविधा हासिल नहीं होती. केंद्र और राज्य सरकारें वृद्धावस्था पेंशन देती हैं, पर उसकी राशि नाकाफी है. आगामी कुछ वर्षों में यह समस्या और व्यापक और गंभीर होती जायेगी. इसके समाधान में सरकार और सामाजिक संस्थाओं को जुटना होगा, तभी कोई रास्ता निकल पायेगा.

आशुतोष चतुर्वेदी
प्रधान संपादक, प्रभात खबर
ashutosh.chaturvedi@prabhatkhabar.in

पश्चिमी देशों में वृद्धजनों के लिए पर्याप्त पेंशन की व्यवस्था है. उनके सामने मुख्य समस्या एकाकीपन की है. वहां बुजुर्गों की देखभाल के लिए ओल्ड एज होम जैसी व्यवस्था है, लेकिन भारत में ऐसी कोई व्यवस्था नहीं है.

बोधि वृक्ष

अति का विचार

मैं एक घर में रहता था कुछ दिनों तक. एक बार मैंने रात को कोई ग्यारह बजे पति-पत्नी में झगड़ा सुना. मैं चुप ही रहा. बात यहां तक बढ़ गयी कि पति ने कहा कि मैं अभी जाकर मर जाऊंगा. तो थोड़ा मैं चिंतित हुआ कि अब मेहमान हूं, तो भी क्या हुआ! फिर भी मैंने कहा कि अभी जाने दो. जब उस पति को मैंने घर के बाहर निकलते देख लिया तो मैं भागा. मैंने उसकी पत्नी से कहा, अब कुछ करना पड़ेगा. उसने कहा, फिकर मत करो; अभी पांच-सात मिनट में वापस आते हैं. सचमुच वह पांच-सात मिनट में वापस भी आ गया. सुबह मैंने उससे पूछा कि कहां तक गये थे? उसने कहा कि कई दफा ऐसा हो जाता है. गुस्से में चला जाता हूं, रेल की पटरी पास ही है, बस वहां तक पहुंचा कि सब ठीक हो जाता है; फिर वापस लौट आता हूं. यह जीने का हिस्सा है. ऐसे ही हम अपने को धोखा दे लेते हैं कि चलो, मरे जाते हैं; अब तो बात खत्म हुई. मरने के खयाल से ही जीवन का बोझ क्षणभर को नीचे उतर गया, फिर उठाकर रख लेंगे सिर पर. कहीं कोई इतने जल्दी मरा जाता है! तुमसे मैं कहता हूं? जो मर भी जाते हैं- कुछ लोग जल्दबाजी कर लेते हैं और मर जाते हैं- अगर वे तुम्हें मिल जायें, तो वे पछताते मिलेंगे. वे कहेंगे, जरा जल्दी कर दिये; क्षणभर और ठहर जाते. कुछ लोग तेजी में गुजर जाते हैं. क्षणभर में घट जाये तो घट जाये, जरा विलंब हो जाये तो तुम वापस लौट आओगे. यह मन का ढंग है. जहां प्रेम है, वहां घृणा है. जहां लगाव है, वहां विराग भी. जहां-जहां राग है, वहां-वहां वैराग्य आता ही रहेगा. तुमने कभी खयाल किया, कितनी बार घर से भाग उठने का मन हो जाता है! छोड़ो पत्नी-बच्चे! मगर स्टेशन भी न पहुंच पाओगे कि लौट आओगे. यह कोई स्थायी भाव नहीं है, यह तो कई बार आता है. कितनी बार आदमी मरना नहीं चाहता! मनोवैज्ञानिक कहते हैं कि ऐसा आदमी खोजना कठिन है, जिसने जिंदगी में कम-से-कम दस बार आत्मघात का विचार नहीं किया हो. ऐसा करना जरूरी है. जिंदगी अति हो जाती है, तो मरने का भाव करके खुद को संभाल लेते हैं.

आचार्य रजनीश ओशो

ज्येष्ठ पूर्णिमा : नागार्जुन का जन्मदिन

आज ज्येष्ठ पूर्णिमा है. बाबा नागार्जुन का जन्मदिन. उनकी याद बार-बार आती है. आज के दिन कुछ और अधिक. उन पर बहुत कुछ लिखा और कहा गाय है, पर मुझे बार-बार ऐसा लगता रहा है कि कुछ छूट गया है या जिस पर हमारा ध्यान अधिक होना चाहिए, उधर नहीं गया है. उनका रचना-समय 68 वर्ष का है- 1929 से 1997 तक. वे सदैव उनके कवि रहे हैं, जिन्होंने 'एक-एक दाने की खातिर सौ-सौ पापड़ बेले.' उनकी 917 कविताओं को, जिनमें हिंदी की 694, मैथिली की 155, बंगला की 50 और संस्कृत की 18 कविताएं हैं, बार-बार पढ़ने के बाद ऐसा क्यों लगता है कि ये कविताएं हमसे कई बार के पाठ की मांग करती हैं. ये मेरी दृष्टि में स्वतंत्र भारत के सबसे बड़े भारतीय राजनीतिक कवि हैं. राजनीतिक कविताओं को टेढ़ी नजर से देखनेवाले आज भी कम नहीं हैं, जबकि राजनीति ही सब कुछ है. अरस्तू ने 'राजनीति' को 'मानवीय संबंधों का दर्शन' माना है और ब्रेख्त (10 फरवरी, 1898- 14 अगस्त, 1956) तो राजनीतिक रूप से अशिक्षित व्यक्ति को सर्वाधिक अशिक्षित कहते हैं, जो न सुनता है, न बोलता है और न राजनीतिक घटनाओं में भाग लेता है. वह जीवन का मूल्य नहीं जानता. उसे सेम, मछली, आटा, भाड़ा-किराया, जूतों और दवाओं की कीमत नहीं मालूम, जो सब राजनीतिक निर्णयों पर निर्भर करती हैं. राजनीतिक अशिक्षित इतना मंदबुद्धि और मूर्ख है कि वह घमंडी यह कहते हुए अपनी छाती फुलाता है कि उसे राजनीति से घृणा है. यह मूर्ख नहीं जानता कि उसके राजनीतिक अज्ञान से वेश्याएं, परित्यक्त बच्चे और सभी चोरों में सबसे खराब बुरे राजनीतिज्ञ, भ्रष्टाचारी और राष्ट्रीय-बहुराष्ट्रीय कंपनियों के चाटुकार जन्म लेते हैं.

अपनी पहली प्रकाशित कविता 'शोक-श्रद्धांजलि' (1929) में अपने देश की दशा देख कर उनका दिल दहल उठा था- 'हौं पुनि देख दशा निज देशक/ जानथि ईश्वर कोढ़ फटै अछि.' नागार्जुन की कविता की सम्यक पहचान के लिए 1929 से 1997 तक के भारत की सम्यक पहचान आवश्यक है. किसी भी भारतीय कवि ने दो प्रधानमंत्रियों- नेहरू और इंदिरा गांधी पर इतनी कविताएं नहीं लिखीं. आज जब चारों ओर झूठ का बोलबाला है, इस कवि ने 1944 में मैथिली में कविता लिखी थी- 'अहां बड़ड फूसि बजदू छी' और वह भी 'ढाकी के ढाकी' (टोकरी के टोकरी). नागार्जुन को 'आधुनिक कबीर' कहा गया है, पर उन्होंने तुलसी बाबा के साथ रहने पर कविता वैतरणी पार करने की बात कही है- 'तुलसी बाबा साथ रहइ त/ पार करब/ कविता बइतरनी.' स्वतंत्र भारत की निर्लज्ज राजनीति से वे परेशान थे. उनकी एक बंगला कविता है- 'निर्लज्ज नाटक' (1978)- 'राजनीति होयेछे संप्रति निर्लज्ज नाटक.' यह निर्लजता चालीस वर्ष में और अधिक बढ़ी है. लेनिन पर उन्होंने संस्कृत में भी कविता लिखी. और 'हिंसा महिमा' पर भी- 'हिंसे देवि नमस्तुस्यं/ महाकाल सहोदरे.' शायद डॉलर पर संस्कृत में कविता केवल उन्होंने ही लिखी- 'डालराः'. हिंदी, मैथिली, संस्कृत सभी भाषाओं में उन्होंने देश-दशा पर कविताएं लिखी हैं. जिस जेएनयू पर बाद में हमले किये गये, उसे नागार्जुन ने 'शानदार' कहा था- 'असले जायगाहि एइ भारी चमत्कार/ जेएनयू जेएनयू जेएनयू.'

नागार्जुन हिंदी के अकेले कवि हैं, जिन्होंने अपनी कविताओं में कई बार अपने को 'जनकवि' कहा है. जनकवि होने के कारण ही उन्होंने सच कहा, कटु-तिक्त कहा, खरा कहा, व्यंग्य किया और सत्ताधारियों एवं शासकों की नीयत पर सवाल खड़े किये. किसी भी भारतीय कवि ने कांग्रेस को अपनी कविताओं में ऐसी खरी-खोटी नहीं सुनायी. जनकवि से पहले उन्होंने अपने को 'एक मित्र को पत्र' (1946) कविता में अपने को 'महाकवि' कहा है. बाद में 'महाकवि' से उन्हें बड़ा 'जनकवि' लगा. वे कभी नहीं हकलाये- 'जनकवि हूं, मैं क्यों हकलाऊं?' नागार्जुन के लिए गांधी, भगत सिंह और लेनिन तीनों महत्वपूर्ण थे. अंग्रेजों ने इस देश में शासन करने के लिए जो सत्ता-संरचना निर्मित की थी, वह आजादी के बाद भी यथावत बनी रही. नागार्जुन इस संरचना को तोड़कर एक नयी संरचना के निर्माण के पक्ष में थे. इसी कारण वे तेलंगाना, नक्सल आंदोलन और संपूर्ण क्रांति की ओर मुड़े. संघर्ष प्रतिरोध और क्रांति के पक्ष में वे सदैव रहे. ब्रिटिश साम्राज्यवाद के साथ ही उन्होंने अमेरिकी साम्राज्यवाद का भी विरोध किया. क्या भारत का कोई अर्थशास्त्री 1948 में भारतीय ब्रिटिश और अमेरिकी पूंजी के उस गंठजोड़ पर नागार्जुन की तरह मुख था? 'लाल भवानी' कविता में कवि ने लिखा- 'अंग्रेजी, अमेरिकी जोंकें, देशी जोंकें एक हुईं/ नेताओं की नीयत बदली, भारत माता टेक हुई.' नौकरशाही के 'रद्दी ढांचे' पर उन्होंने प्रहार किया. नागार्जुन 'सिस्टम' का साथ देनेवाले नहीं, उसे ध्वस्त करनेवाले कवि हैं. आज देशभक्तों की बाढ़ आयी हुई है. नागार्जुन ने 1948 में लिखा- 'देशभक्ति की सनद मिल रही है, आये दिन शैतानों को.' गोडसे को आज जो भी राष्ट्रभक्त मान ले, उसकी मूर्तियां स्थापित करे, नागार्जुन ने उसे 'स्थिर स्वार्थों का प्रहरी' जागरूक और 'मानवता का महाशत्रु' कहा था, 'संप्रदायवादी दैत्यों के निकट खोह' दिखाये थे. नागार्जुन, केदारनाथ अग्रवाल और मुक्तिबोध ने जिस प्रकार अमेरिका की आलोचना की है, उसे देख-समझ कर हिंदी आलोचना एक नये मार्ग पर बढ़ सकती है. यह बता सकती है कि हमारे कवियों की समझ गृह नीति, अर्थनीति और विदेश नीति में नेताओं की तुलना में कैसी थी.

रविभूषण
वरिष्ठ साहित्यकार
ravibhushan1408@gmail.com

नागार्जुन हिंदी के अकेले कवि हैं, जिन्होंने अपनी कविताओं में कई बार अपने को 'जनकवि' कहा है. जनकवि होने के कारण ही उन्होंने सच कहा, कटु-तिक्त कहा, खरा कहा, व्यंग्य किया और सत्ताधारियों एवं शासकों की नीयत पर सवाल खड़े किये.

आपके पत्र

जान बचाने के लिए जरूरी

पूरे देश में गर्मी का भयानक और भयावह प्रकोप जारी है. आधा जून खत्म हो गया है, लेकिन मानसून का पता नहीं है. दिल्ली, राजस्थान आदि में 48 डिग्री सेल्सियस तापमान से लोगों का जीना मुश्किल हो रहा है. बिहार के अकेले पटना और औरंगाबाद जिलों में लगभग 100 लोगों की जानें लू से हो चुकी हैं. लोग अस्पतालों में दम तोड रहे हैं. यह असामयिक मौत उन गरीबों की हो रही है, जो झुलसाने वाली गर्मी में रोजी-रोटी के लिए बाहर खून-पसीना बहाने को अभिशप्त हैं. यह सब पर्यावरण असंतुलन और जलवायु परिवर्तन के कारण हो रहा है. प्रचंड गर्मी के कारण मस्तिष्क ज्वर से सिर्फ मुजफ्फरपुर में दर्जनों लोगों की जानें चली गयी हैं. प्रकृति के इस कोप को समझने की जरूरत है. यदि हम सब पर्यावरण और प्रकृति के संरक्षण के प्रति ऐसे ही उदासीन और लापरवाह रहेंगे, तो आने वाले समय में जान-माल का नुकसान और ज्यादा होगा, असामयिक मौतें होंगी. इसलिए प्रदूषण नियंत्रण के लिए ठोस और कड़े फैसले हमें लेने ही होंगे. जान की रक्षा के लिए यह सब हमें करना ही पड़ेगा. इसी में हमारा और हमारे नौनिहालों का जीवन बच सकता है.

युगल किशोर, रांची

मिल-बैठ कर समाधान निकालें

पश्चिम बंगाल में जारी राजनीतिक हिंसा के बाद अब जूनियर डॉक्टरों की हड़ताल ने हालात को और भी खराब कर दिया है. इलाज के अभाव में मरीज परेशान हैं, लेकिन इस पूरे प्रकरण में वहां की मुख्यमंत्री ममता बनर्जी ने बड़ी गैर जिम्मेदारी दिखायी है. राजनीतिक हिंसा के लिए जहां उन्होंने सीधे-सीधे केंद्र सरकार को दोषी ठहरा दिया, वहीं डॉक्टरों की हड़ताल को भाजपा-माकपा प्रायोजित बताने में भी देरी नहीं की. उन्मादी भीड़ के हमले में घायल डॉक्टरों को देखना तक उन्होंने जरूरी नहीं समझा, हमलावरों की गिरफ्तारी तो बहुत दूर की बात है. दूसरी तरफ, डॉक्टरों के लिए भी उचित होता कि वे हड़ताल को सांकेतिक रखते हुए मरीजों का इलाज करते रहते. बहरहाल, जितनी जल्दी हो सके दोनों पक्ष मिल-बैठ कर इस समस्या का समाधान तलाश लें, ताकि आम आदमी को हो रही भयानक परेशानी से मुक्ति मिल सके.

चंदन कुमार, देवघर.

फादर्स डे की प्रासंगिकता

भारत जैसे समृद्ध सांस्कृतिक विरासत वाले देश में पता नहीं फादर्स डे कब आयातित हो गया. जहां पिता अपनी संतान के लालन-पालन में अपनी अस्थियां तक गला देता है, खुद की इच्छाओं-भावनाओं जैसी तमाम चीजों पर काबू रख सिर्फ संतान के सुख को अपना सुख मानता है, हमें हमारी संस्कृति ने पितृदेवो भवः का भाव सिखलाया है, वहां पिता के प्रति सम्मान को सिर्फ एक दिवस में बांध कर फादर्स डे मनाना अपनी संस्कृति का मजाक उड़ाने जैसा लगता है. हां, पाश्चात्य देशों के लिए यह प्रासंगिक हो सकता है, जहां माता-पिता में कुछ ही वर्षों में अलगाव हो जाता है और संतान एवं पिता एक-दूसरे से दूर हो जाते हैं.

ऋषिकेश दुबे, बरिगावां, पलामू

कुछ अलग

तूफानों का नामकरण

फनी तूफान ओड़िशा से गुजरा, गुजरात से वायु तूफान गुजर गया. मार बवाल हो लिया, गुजरात में ऐसा हो जायेगा, वैसा हो जायेगा. यह कर गुजरेगा वह कर गुजरेगा. गुजरात का तूफान कुछ कुछ गुजरात के हार्दिक पटेल की गति को ही प्राप्त हो गया, जाने क्या क्या उम्मीदें लगा ली गयी थीं कि ये कर जायेगा, वो कर जायेगा.

वायु तूफान लौटकर भी आ सकता है- कुछ ऐसी बातें भी चल रही हैं. ओ माय गॉड! तूफान है या एकता कपूर का सीरियल? बार बार, हर बार, फिर एक बार. तूफान को तूफान रहना चाहिए, एकता कपूर के सीरियल जैसा न हो जाना चाहिए कि आये ही चले जा रहे हैं. खैर, वायु तूफान निकल लिया पाकिस्तान की तरफ. पाकिस्तान तो इतने तूफानों से घिरा रहता है कि छोटे-मोटे तूफान उस पर कुछ ना असर डाल सकते.

तूफानों के नामों का अध्ययन करें, तो कई नाम बेवजह लगते हैं. साल 2014 में आये हुए एक तूफान का नाम नर्गिस था. नर्गिस भारत की शानदार अभिनेत्री रही हैं, उनके नाम पर तूफान का नाम रखना ठीक नहीं है, उनके बेटे की हरकतें देख कर जरूर किसी तूफान का नाम संजय दत्त रखा जा सकता है. साल 2014 में ही आये एक तूफान का नाम रखा गया था नीलोफर, यह नाम साठ के दशक की किसी फिल्म की हीरोईन का नाम है. खूबसूरत नामों पर तूफान का नामकरण ठीक ना है.

साल 2010 में आये एक तूफान का नाम रखा गया- लैला. मजनू और लैला जैसे नाम तो मुहब्बत के पर्याय हैं, यद्यपि मुहब्बत खुद छोटा-मोटा तूफान है, पर लैला के नाम पर तूफान का नाम रखने पर पुनर्विचार होना चाहिए.

साल 2014 में ही आये एक तूफान का नाम रखा गया था- हुदहुद, यूं तो हुदहुद एक पक्षी का नाम है, पर हुदहुद नाम भारतीय संदर्भों में किसी एक मोटे-ताजे और घामड़ टाइप बच्चे का लगता है. तूफान कुछ भी हो, लेकिन घामड़ तो न होता, तबाहकारी ही होता है. तबाहकारी तत्वों के नाम भयंकर टाइप ही रखे जाने चाहिए. हुदहुद, नीलोफर, नर्गिस जैसे नामों से साफ ना हो पाता कि हम किसी कॉमेडी या पारिवारिक सीरियल के चरित्रों की बातें कर रहे हैं या फिर तूफानों की बात कर रहे हैं. अमेरिका का भी हाल कुछ अलग ना है, वहां डॉली और एलेना जैसे नाम तूफानों के रखे गये हैं.

तूफानों के नामकरण पर गंभीर विमर्श बनता है. मसलन कि इन तूफानों के नाम तबाहकारी तत्वों के नाम पर होने चाहिए. जैसे किसी तूफान का नाम होना चाहिए, हाफिज, पाकिस्तानी आतंकी हाफिज सईद के नाम पर. पर हाफिज तो बहुत प्यारा नाम है और इसका बहुत बढ़िया अर्थ है- हाफिज यानी हिफाजत करनेवाला, रक्षा करनेवाला. पर पाक से जुड़ कर सारे अर्थ और आशय बदल जाते हैं. इसलिए तूफान का नाम रखा जाये, हाफिज पाकवाला. लेकिन, पाक शब्द का बहुत अच्छा अर्थ है पाक यानी पवित्र. पर पाक से जुड़ कर हर चीज तबाहकारी हो जाती है. हाफिज आतंकी हो जाता है और पाक खुद आतंकी मुल्क बन जाता है!

आलोक पुराणिक
वरिष्ठ व्यंग्यकार
puranika@gmail.com

देश दुनिया से

हांगकांग में लोकतंत्र के लिए हो रहा प्रदर्शन

हांगकांग में विरोध प्रदर्शन करते लाखों लोग नये प्रत्यर्पण कानून के खिलाफ आवाज उठाने के अलावा लोकतंत्र की मांग करते हैं. ऐसा लोकतंत्र जो अमेरिका, जर्मनी जैसे देशों में नजर आता है. हांगकांग के लोगों ने बेहद प्रभावीशाली ढंग से दुनिया को दिखाया है कि लोकतंत्र के लिए संघर्ष करना कितना अहम है. मैं 2017-18 के शैक्षणिक सत्र में हांगकांग यूनिवर्सिटी में बतौर स्कॉलर गया था और वहां मैंने देखा कि कैसे लगातार लोग वहां गुस्सा हो रहे थे और हताश भी होते जा रहे थे. साल 2014 के अंब्रेला मूवमेंट में लोकतंत्र के लिए प्रदर्शन कर रहे छात्र जोशुआ वॉन्ग से जुड़े छात्रों को इस दौरान जेल की सजा भी हो गयी थी. यहां इस बात पर ध्यान देना जरूरी है कि प्रदर्शनकारी सिर्फ वही मांग कर रहे हैं, जिस पर बीजिंग के कम्युनिस्ट नेतृत्व ने सहमति जतायी थी. चीन को हांगकांग सौंपने की शर्त और हांगकांग के संविधान का मूल कानून, साफ-साफ कहता है कि हांगकांग, चीन के साथ रहकर 'एक राष्ट्र दो व्यवस्था' की अवधारणा पर काम कर सकता है. दूसरे शब्दों में कहा जाये तो इसका मतलब यह है कि हांगकांग अपने अधिकार क्षेत्र में लोकतांत्रिक भी हो सकता है.

अलेक्जेंडर गोएरलख

कार्टून कोना

साभार : कार्टूनमूवमेंटडॉटकॉम

पोस्ट करें : प्रभात खबर, 15 पी, इंडस्ट्रियल एरिया, कोकर, रांची 834001, **फैक्स करें** : 0651-2544006,
मेल करें : eletter@prabhatkhabar.in पर ई-मेल संक्षिप्त व हिंदी में हो. लिपि रोमन भी हो सकती है